**ओ३म्**

**‘स्वामी दयानन्द के चार विलुप्त ग्रन्थ’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

स्वामी दयानन्द ने सन् 1863 में मथुरा में प्रज्ञाचक्षु दण्डी गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती से विद्यार्जन पूरा कर अज्ञान के नाश व विद्या की वृद्धि सहित असत्य व अज्ञान पर आधारित धार्मिक, सामाजिक व राजधर्म सम्बन्धी मान्यताओं का खण्डन और सत्य पर आधारित मान्यताओं व सिद्धान्तों का प्रचार व मण्डन किया था। वह उपदेश, प्रवचन वा व्याख्यानों द्वारा प्रचार के साथ अपने सम्पर्क में आने वाले लोगों से वार्तालाप व शास्त्रार्थ भी करते थे। उन्होंने उन लोगों तक अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए जो उनके उपदेशों में सम्मिलित नहीं हो सकते थे, अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। ग्रन्थों का प्रणयन व प्रकाशन का एक कारण यह भी था, उनके जीवनान्त के बाद भी लोग उनके सत्य मन्तव्यों, विचारों सहित वैदिक सिद्धान्तों से लाभ उठा सकें। उनका साहित्य आज भी न केवल वैदिक मत के उनके अनुयायियों का मार्गदर्शन कर रहा है अपितु इससे अनेक गवेषक, शोधार्थी व अन्य मत के लोग भी लाभान्वित हुए हैं व हो रहे हैं। स्वामी जी ने बड़ी संख्या में ग्रन्थ लिखें हैं जिनमें प्रमुख हैं सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि। इस लेख में हम उनके कुछ लघु ग्रन्थों की चर्चा कर रहे हैं जो उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन के आरम्भिक काल में लिखे थे, उनका प्रकाशन भी हुआ था तथापि वह सुरक्षित नहीं रखे जा सके और सम्प्रति लुप्त व अनुपलब्ध हैं।

 स्वामीजी के ज्ञात ग्रन्थों में चार लघु ग्रन्थ ऐसे हैं जो विलुप्त हुए हैं। यह ग्रन्थ हैं, सन्ध्या, भागवत-खण्डन, अद्वैतमत-खण्डन तथा गर्दभतापिनी-उपनिषद। सन्ध्या स्वामी दयानन्द जी द्वारा रचित ग्रन्थों में प्रथम पुस्तक है। इसकी रचना की भूमिका इस प्रकार है कि स्वामी दयानन्द जी लगभग तीन वर्ष (1860-1863) मथुरा में दण्डी श्री स्वामी विरजानन्द सरस्वती से विद्याध्ययन करके सन् 1863 में आगरा पधारे। यहां लगभग डेढ़ वर्ष तक निवास किया। यहां पर स्वामी जी ने सर्वप्रथम **‘सन्ध्या’** की एक पुस्तक लिखी। इसे आगरे के महाशय रूपलाल जी ने छपवाकर प्रकाशित किया। इसके विषय में स्वामी दयानन्द जी के जीवनी लेखक पं. लेखराम जी द्वारा संगृहीत प्रमुख जीवनचरित्र में लिखा है कि स्वामी जी के उपदेश से एक सन्ध्या की पुस्तक, जिस के अन्त में लक्ष्मी-सूक्त था, छपवाई गयी और एक आने में बेची गई। समस्त नगर के लोगों ने बिना किसी पक्षपात के उन पुस्तकों को मोल लिया। कुछ पण्डितों ने इतना आक्षेप किया कि इस में विनियोग नहीं रखे गये, परन्तु सब ने ली और बाल-बच्चों को पढ़ाई। छपाई आदि का रुपया रूपलाल ने दिया। तीस हजार के लगभग इस की कापी छपी थी और डेढ़ हजार रुपया व्यय हुआ था। यह तीन वर्णों के लिए थी। आर्यसमाज के एक अन्य विद्वान पं. महेशप्रसाद जी ने **‘महर्षि दयानन्द सरस्वती’** नामक अपनी पुस्तक में लिखा है कि **‘श्री स्वामी जी ने संवत् 1920 वि. (सन् 1863 ई.) में सबसे पहिले संध्या की पुस्तक आगरे में लिखी थी। वहीं के एक सज्जन महाशय रूपलाल जी ने डेढ़ सहस्र रुपया व्यय करके इसकी तीस सहस्र प्रतियां छपवाई थी और मुफ्त बांटी गईं थी।’** यह पुस्तक स्वामी दयानन्द की सर्वप्रथम कृति है। स्वामी जी महाराज-ईश्वर-भक्ति पर विशेष बल देते थे, अतएव उन्होंने अपने जीवन-काल में सन्ध्या की कई पुस्तकें प्रकाशित कीं। उनके द्वारा लिखित एक अन्य पुस्तक पंचमहायज्ञ विधि है जिसमें सन्ध्या व इसकी विधि को विस्तार से व प्रमाणों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। यही सन्ध्या आजकल आर्यसमाजों व आर्यसमाजियों द्वारा देश व विश्व भर में प्रयोग में लाई जाती है। सन्ध्या की यह पुस्तक आगरे के **‘ज्वालाप्रकाश प्रेस’** में छपी थी। इसका आकार व प्रकार अज्ञात है।

 **‘भागवत-खण्डन’** स्वामी जी का ऐसा लघु ग्रन्थ है जो सन् 1866 में प्रकाशित किया गया। आर्यजगत के प्रख्यात विद्वान पं. युधिष्ठिर मीमांसक इस विषय में लिखते हैं कि श्री स्वामी जी महाराज ने संवत् 1923 के आरम्भ में भागवत-खण्डनम् नाम दूसरी पुस्तक लिखी थी। **‘भागवत’** के दो पुराण है। एक **‘श्रीमद्भागवत’** (वैष्णवों का) और दूसरा **‘देवीभागवत’।** यह भागवत-खण्डन **‘श्रीमद्भागवत’** नामक पुराण के खण्डन में लिखा गया था। **‘श्रीमद्भागवत’** वैष्णव संप्रदाय का प्रमुख ग्रन्थ है। अतः भागवत-खण्डन का दूसरा नाम **‘वैष्णवमतखण्डन’** भी है। श्री पं. लेखराम जी ने ऋषि दयानन्द के जीवनचरित्र में इसका उल्लेख **‘भड़वाभागवत’** और **‘पाखण्ड-खण्डन’** नाम से किया है। पं. लेखराम जी द्वारा संकलित जीवनचरित के हिन्दी संस्करण में इस पुस्तक का परिचय उपलब्ध होता है। उन्होंने लिखा है कि ‘पाखण्ड-खण्डन (सात) पृष्ठ की यह पुस्तक संस्कृत भाषा में स्वामीजी ने भागवत-खण्डन विषय पर लिखी। सं. 1921 व 1922 में जब वे दूसरी बार आगरा में रहे उसी समय का लिखा गया यह पुस्तक मालूम होता है। सब से पुरानी हस्तलिखित प्रति इसकी ज्येष्ठ द्वितीय 9 बृहस्पतिवार 1923 तदनुसार 7 जून सन् 1866 की लिखी हुई पं. छगनलालजी शास्त्री किशनगढ़ के पास विद्यमान है। अजमेर से वापस लौटकर सं. 1923 के अन्त में आगरे में **‘ज्वालाप्रकाश प्रेस’** में पण्डित ज्वालाप्रसाद भार्गव के प्रबन्ध में इसकी कई हजार प्रतियां छपवायीं और 1 बैशाख सं. 1924 तदनुसार 12 अप्रैल सन् 1867 के मेला हरिद्वार पर इसे विना मूल्य वितरण किया। यह अत्यन्त सुन्दर और समयोचित ट्रैक्ट (पुस्तिका) उच्चकोटि की शुद्ध और ललित संस्कृत में है। यह पुनः प्रकाशित नहीं हुआ।’ महर्षि दयानन्द के एक अन्य जीवनी लेखक पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय जी ने भी भागवत-खण्डन के विषय में लिखा है। उन्होंने एक विशेष बात यह लिखी है कि इस पुस्तक की प्रतियां आगरा में बांटी गईं और शेष हरिद्वार में बांटने के अभिप्राय से साथ ले गये और इन्हें कुम्भ के मेले में वहां बांटा गया। पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी ने पुस्तक विषयक एक महत्वपूर्ण बात यह लिखी है कि जिस काल में यह लघु पुस्तिका लिखी गई, उस समय राजपूताना तथा उत्तर भारत में श्रीमद्भागवत की कथा का बहुत प्रचलन था, अतः सबसे प्रथम इसी पुराण के खण्डन में यह पुस्तक छपवाई गई। यह भी लिख दंे कि सम्प्रति यह पुस्तक उपलब्ध है जिसका श्रेय पं. मीमांसक जी को ही है। यह पुस्तक पं. मीमांसक जी को काशी में सन् 1962 में तब उपलब्ध हुई जब वह वहां रामलालकपूर ट्रस्ट के पुस्तकालय में पुरानी पुस्तकों को टटोल रहे थे। वहां दैवयोग से अनायास उनकी दृष्टि **‘‘पाषंडि मुखमर्दन”** पुस्तक पर पड़ी जो इन्द्रप्रस्थ निवासी श्री विश्वेश्वरनाथ गोस्वामी नाम के एक पण्डित जी की लिखी हुई थी और इसका प्रकाशन मुरादाबाद के सुदर्शन यन्त्रालय में हुआ था। 62 पृष्ठों की इस पुस्तक में लेखक ने ऋषि दयानन्द विरचित **‘भागवत-खण्डन’** को अक्षरशः उद्धृत करके उसका खण्डन किया है। इस प्रकार यह पुस्तक सुरक्षित उपलब्ध हो गई जिसे पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी ने हिन्दी अनुवाद सहित रामलालकपूर ट्रस्ट से प्रकाशित कर दिया और अब यह उपलब्ध है व इन पंक्तियों के लेखक के पास भी है।

 स्वामी दयानन्द जी लिखित एक अन्य विलुप्त पुस्तक **‘अद्वैतमत-खण्डन’** है जिसे उन्होंने काशी में ज्येष्ठ सं. 1927 अर्थात् जून, 1870 में लिखा था। यह पुस्तक सम्प्रति अनुपलब्ध वा विलुप्त है। पं. लेखराम जी संगृहीत स्वामी दयानन्द के जीवन चरित में इस लघुग्रन्थ का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि ‘यह ट्रैक्ट (लघु पुस्तिका) स्वामी जी ने काशी में शास्त्रार्थ सं. 2 (अर्थात् काशी शास्त्रार्थ) के पश्चात् छपवाया और यत्न करके **‘कविवचन-सुधा’** नामक हिन्दी के मासिक पत्र में संस्कृत भाषा में भाषानुवाद सहित मुद्रित कराया।’ सन्दर्भः कविवचनसुधा जिल्द 1 संख्या 14-15 13 जून सन् 1870। यह लाइट प्रेस बनारस में गोपीनाथ पाठक के प्रबन्ध से प्रकाशित हुआ। यह ट्रैक्ट नवीन-वेदान्त के दुर्ग को तोड़ने के लिये सैनिक बल से अधिक बलवान है। इस पुस्तक का दूसरा संस्करण प्रकाशित नहीं हुआ। यह पुस्तक भी विगत लगभग 140 वर्षों से अनुपलब्ध वा विलुप्त है।

स्वामी दयानन्द जी का चैथा विलुप्त ग्रन्थ है **‘गर्दभतापिनी-उपनिषद्।’** इसका उल्लेख कर पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी ने लिखा है कि श्री स्वामीजी महाराज के जीवनचरित्र से विदित होता है कि उनका मुखारविन्द सदा प्रसन्न रहा करता था। वे अपने भाषणों से कभी-कभी श्रोताओं का मनोरंजन कराया करते थे। श्रोताओं के मनोरंजन के लिये उन्होंने **‘‘रामतापिनी, गोपालतापिनी”** आदि उपनिषदों के सदृश एक **‘‘गर्दभतापिनी-उपनिषद्”** बनाई थी और कभी-कभी उसके वचन सुनाकर श्रोताओं का मनोरंजन किया करते थे। इस उपनिषद् का उल्लेख पं. देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित्र (भाग 1, पृष्ठ 279) में इस प्रकार किया है-- **‘‘श्री स्वामी जी ने रामतापिनी और गोपालतापिनी उपनिषदों की तरह गर्दभतापनी उपनिषद् भी बना रखी थी, जिसमें से कभी-कभी वचनों को उद्धृत करके सुनाया करते थे।”** मीमांसक जी इस पर टिप्पणी कर कहते हैं कि ‘यह वर्णन प्रयाग का है। इस बार श्री स्वामी जी महाराज द्वितीय आषाढ़ वदी 2 सं. 1931 को प्रयाग पधारे थे। अतः यह पुस्तक प्रयाग जाने से पूर्व ही रची गई होगी। दुःख है कि इसकी कोई प्रतिलितपि सुरक्षित नहीं रक्खी गई, अन्यथा वह बडे मनोरंजन की वस्तु होती।‘

महर्षि दयानन्द के साहित्य के प्रेमी जब भी उनके साहित्य का अध्ययन करते हैं तो इन तीन ग्रन्थों की उपलब्धता न होने से उनको पीड़ा होती है। यह बता दें कि महर्षि दयानन्द की प्रथम पुस्तक **‘सन्ध्या’** की प्रति अडयार के राजकीय पुस्तकालय में है। वहां से श्री आदित्यपाल सिंह आर्य ने इसकी प्रति प्राप्त की थी। वह वर्षों तक उनके पास पड़ी रही। हमने उनसे प्राप्त करने का प्रयास किया तो जानकारी मिली कि वह पुस्तक उनसे उनके मित्र श्री पंडित उपेन्द्र राव राव ले गये थे। अब उनका देहान्त हो गया है अतः वह मिल न सकी। हमने भी अडयार स्थित पुस्तकालय को लिखा था परन्तु हमें वहां से कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। अकोला के श्री राहुल आर्य इसकी प्राप्ति के लिए प्रयासरत है। महर्षि दयानन्द के इन विलुप्त हुए ग्रन्थों से यह शिक्षा मिलती है कि पुस्तकों के संरक्षण में कोताही नहीं करनी चाहिये। उसको सुरक्षित रखना आवश्यक एवं महत्वपूर्ण हैं। अन्यथा पछताना होता है।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**